ISSN: 0973-0583

छोटानागपुर की भूमि व्यवस्था पर अंग्रेजी शासन व्यवस्था का प्रभाव

डॉ० योगेश कुमार

रिसर्च फेलो, राँची विश्वविद्यालय,राँची

शोध सार

झारखण्ड क्षेत्र में कोलारियन आदिवासियों के आगमन के बाद कालक्रम में उनकी सभ्यता संस्कृति का विकास हुआ। इसके संचालन के लिए परामपरागत नियम बने ताकि एक समतामूलक तथा सौहार्दपूर्ण जीवन शैली की रचना हो सके। जल, जंगल और जमीन पर आदिवासियों का अधिकार रहा है। भूमि व्यवस्था में अंग्रेजी शासन काल में परिवर्तन करने का प्रयास किया गया, परन्तु उन्हें विद्रोह का सामना करना पड़ा। आदिवासी समुदाय की भूमि की रक्षा हो सके। इसलिए छोटानागपुर में 'छोटानागपुर काश्तकारी अधिनियम' बनाया गया। विलक्न्सिन रूल की कोल्हान क्षेत्र में लागू किया गया, अलग-अलग प्रावध ान किया गया, ताकि आदिवासी भूमि की रक्षा की जा सके। विकास के केन्द्र में हमेशा आदिवासी आ जाते हैं और उन्हें विकास की कीमत चुकानी पड़ती है। जंगल और जमीन से बेदखल होना पड़ता है। आज आदिवासी अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह है। आज भी आदिवासी क्षेत्र संघर्ष एवं द्वंद्व से उद्देलित हैं जैसा कि यह ब्रिटिश काल में था। आज का आदिवासी समाज अपने भविष्य और अस्तिमता को लेकर चिंतित है।

शब्द कूँजी : कोलारियन, काश्तकारी, ब्रिटिश, परम्परागत

परिचय:

जंगल की जमीन पर आदिवासियों के अधिकार का मामला बहुत अधिक विवादित भरा रहा हैं। जंगल संसाधनों से भरे है। इसलिए विकास के नाम पर होने वाली हर गतिविधि के केन्द्र में आदिवासी समुदाय आ जाता है। विशेष रूप से उत्तर उदारीकरण के दौर में आदिवासियों की जमीन पर अधिकार एक प्रमुख विद्रोह का कारण बन कर उभर आया है। जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए आदिवासियों ने विद्रोह किया। जमीन पर दखलअंदाजी उन्हें कभी भी रास नहीं आयी। औपनिवेशिक शासन से पहले शासक जंगलों में रहने वाले या उस पर निर्भर रहने वाले लोगों के जीवन में बहुत ज्यादा दखल नहीं देते थे। अंग्रेजों के आने के बाद इस स्थिति में बदलाव आया। उन्होंने अपने साम्राज्यवादी हितों को पूरा करने के लिए जंगलों का दोहन शुरू कर दिया।[1] विगत कुछ दशकों से आदिवासी अस्मिता के प्रश्न भारत एवं विश्व के गवेषकों के विमर्श के केन्द्र में है। इस सक्रियता के कारक के रूप में सभी लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दुनिया भर के आदिवासी बुद्धिजीवी निरंतर यह आवाज उठा रहे हैं कि उनकी नैतिक एवं भौतिक विशिष्टता को न केवल पहचान मिले बल्कि उनकी सकारात्मक भूमिका को इतिहास में उचित स्थान दिया जाए।[2]

भारत में कुल 730 अनुसूचित जनजातियाँ निवास करती हैं जो जनसंख्या के अनुसार 8.6% प्रतिशत हैं। झारखण्ड में निवास करने वाली 32 जनजातियाँ झारखण्ड की धरोहर है। आदिवासी समुदाय अलग-अलग रीति-रिवाजों के साथ अपनी ऐतिहासिक धरोहरों को समेटे हुए हैं। भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से झारखण्ड एक अलग क्षेत्र रहा है। एस. सी. रॉय के अनुसार अपने प्राकृतिक स्वरुप में अपने भू-वैज्ञानिक बनावट और शैल समूह में अपनी वनस्पति और उनकी खनिज सम्पदा में, अपनी जनजातीय विशेषताओं में, अपने सामाजिक और राजनीतिक इतिहास में (बिहार और उड़ीसा) प्रांत के शेष हिस्से से झारखण्ड बिल्कुल अलग है।[3]

झारखण्ड के ऐतिहासिक स्रोतों को देखें तो हमें ज्ञात होता है कि झारखण्ड का इतिहास से संबंधित ग्रंथों का अभाव रहा है, परन्तु इस क्षेत्र की महत्ता हर काल में बनी रही। इतिहासकारों ने इसे अलग-अलग रूप में इस क्षेत्र के नाम को व्यक्त किया। झारखण्ड क्षेत्र के लिए अर्द्धसभ्य, जंगली, पौंड्रिक, मुंडेय, शबर, कोल-किरात प्रदेश के रूप में इसकी व्याख्या की गयी है। ऋग्वेद में इसे'अनास: शिश्नदेव: असुर प्रदेश' नामों से उल्लेख किया गया है।[4]

झारखण्ड की अधिकांश जनसंख्या प्रारंभ से ही स्थायी रही है। यहाँ के मुण्डा भाषी लोगों एवं अन्य जनजातियों में बहुत समानता देखने को मिलती है। यहाँ की जनजातियाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों से स्थानांतरित होते रहे और झारखण्ड में स्थायी रूप से बस गए। मुण्डाओ ने

जंगलों को साफ कर गाँव को विकसित किया। मुण्डाओं का पलायन रोहतासगढ़ से छोटानागपुर के क्षेत्र में हुआ और फिर वे इस क्षेत्र के स्थायी निवासी बन गये।[5]

एस.सी. रॉय के अनुसार ये भारत के प्राचीनतम निवासी माने गये हैं। इनके अनुसार मुण्डाओं का मूल स्थान अरावली पहाड़ियों का क्षेत्र, बाद में ये विंध्य एवं कैमूर की पहाड़ियों तक फैले। वहाँ से और छोटानागपुर के क्षेत्र में फैले, इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने किया।[6] मुण्डाओं ने अपने गाँवों को विकसित किया, जंगलों को काटकर इन्होंने हातू का निर्माण किया। मुण्डाओं के परिवार द्वारा तैयार क्षेत्र, मुंडा समुदाय द्वारा साफ किये गये जंगल की खूँट भी कहा जाता है।[7] प्रत्येक परिवार जो अपने ज्येष्ठतम सदस्य के आदेश के अनुसार कार्य करता, खूँट कहलाता था तथा उस परिवार के मुखिया सहित परिवार के सभी पुरुष सदस्य 'खूँटकट्टीदार' कहलाते थे तथा वे गाँव की सभी चल-अचल सम्पत्ति के प्राकृतिक स्वामी थे। एस.सी. रॉय के अनुसार जिन लोगों की खूँटकट्टीदार नहीं थे वे लोग भी गाँव में बसाये जाने लगे। बाहर से बुलाकर गाँव में बसाये जाने वाले आपसी रिश्तेदार होते थे तथा ऐसे मुण्डा जो नि:संतान होते थे अपनी सेवा देने के लिए गाँवों में बसाये जाते थे। गाँव में बसाने वाले ऐसा मुण्डा ऐता-हातुरे को अर्थात, 'दूसरे गाँव का वासी' कहा जाता था। मुण्डाओं के गाँव जिस प्रकार विकसित होते गये आर्थिक क्रियाकलापों के लिए कुछ लोगों की आवश्यकता हुई। इस कारण उन्होंने अलग-अलग लोगों को बसाया।[8]

एस.सी. रॉय के अनुसार लोहार, ग्वाला, कपड़ा बुनने ताती, यद्यपि मुण्डा ही होते थे किन्तु उन्हें समाज निचला स्थान प्राप्त था। इन्हें आजीविका हेतु गाँव की जमीन दी जाती थी किन्तु यह जमीन मात्र सेवाओं के बदले में आजीविका हेतु दी जाती थी। इस जमीन को यह धारक न ही बेच सकता था और न ही किसी अन्य को हस्तान्तरित कर सकता था। कालान्तर में ये 'प्रजा होरोको' कहलाए। मुण्डाओं की खूंटकट्टी व्यवस्था की तरह ही, उराँव की भी भूमि व्यवस्था है जिसे भुईहरी व्यवस्था कहते हैं। भुईहर शब्द हिन्दी 'कुल' गोत्र शब्द का तद्भव शब्द है। जिसे उराँवों ने बिहार में प्रवेश करते समय जंगलों को साफ कर गाँवों का निर्माण किया था, मुण्डाओं ने अपने को खूंटकट्टीदार कहलाना पसंद किया वहीं उराँवों ने खूंटकट्टीदार की तरह 'भुईहर' शब्द को अधिग्रहन किया। उराँव समाज में भूईहरों का विशेष स्थान और सम्मान होता है। भुईहर उस वंश को कहा जाता है जिसने मूल रूप से जंगलों को काटकर रहने एवं कृषि योग्य भूमि बनाई थी?[9]

मुण्डाओं की एक मजबूत सामुदायिक संरचना है और उनकी भी अपनी परम्परागत व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत यह अपने समुदाय को अनुशासित करते हैं। मुण्डाओं के लिए उनके हातु और कीली पंचायतें बहुत ही पवित्र संस्था थी। मुण्डाओं में यह प्रसिद्ध है। 'नीचे पंचायत और ऊपर सिंगबोंगा', सिंगबोंगा मुण्डाओं का सर्वोच्च देवता है।[10] मुण्डा समाज में सम्पत्ति विभाजन के संदर्भ में कुछ उल्लेखनीय तथ्य थे, मुण्डा परिवार में महिलाओं को सम्पत्ति विभाजन विशेषकर भूमि पर कोई अधिकार नहीं दिया जाता है। पिता अपनी पुत्री को अपने जीवनकाल में कुछ चल संपत्ति या धन उपहार के रूप में दे सकता है लेकिन भूमि नहीं दे सकता है। पिता अपनी संपत्ति का विभाजन करता है तो अविवाहित लड़कियों के लिए कुछ भूमि को निर्धारित कर देता है, जो उनके भरण-पोषण के लिए आवश्यक हैं परन्तु विवाह के बाद वह सम्पत्ति उसकी नहीं होती है।

भरण पोषण के लिए उन्हें जो भूमि दी जाती है वह विवाहकाल तक उनकी कही जाती है। उस पर खेती जो उसका अभिभावक होता है, करता है, वधू को जो मूल्य प्राप्त होता है वह अभिभावक को प्राप्त हो जाता है, जो उसके विवाह में खर्च किया जाता है। विवाह के बाद बहन को दी गई भूमि जो 'खोरपोस' भूमि कहलाती है वह भाईयों के बीच पुन: विभाजित कर दी जाती है। एक मुण्डा परिवार का पिता जब अन्य किसी दूसरी महिला में विवाह करता था, तब वह अपनी पैतृक सम्पत्ति जो उसने अपने पहले पत्नी के पुत्रों एवं पुत्रियों में विभाजित कर दिया था, वह अब दूसरी पत्नी से उत्पन्न बच्चों में पुन: विभाजित नहीं कर सकता था। पिता के हिस्से में जो जमीन भरण-पोषण के लिए थी, वहीं जमीन को वह अपने दूसरी पत्नी के बच्चों में बाँट सकता था। उसे अतिरिक्त जमीन को बांटने का हक नहीं या जो वह पहले बाँट चुका था।[11] उराँव समाज की प्रारंभिक विकास की अवस्था में गाँव के सारे दायित्वों को पाहन उठाता था। वह धर्म के साथ-साथ न्याय व्यवस्था कर भी प्रधान होता था। उराँव समाज में ''भुईहर'' का विशेष स्थान और सम्मान होता है, क्योंकि यह उनकी प्राचीन परम्परागत व्यवस्था से जुड़ा होता है। भुईहर उस वंश से संबंध रखता है जिसने उराँवों को आगमन के बाद मूल जंगलों को काटकर निवास स्थल का निर्माण किया और कृषि के लिए भूमि बनाई ताकि कृषि कार्य किया जा सके। इस प्रकार वह सारी भूमि जिसे किसी परिवार या खूंट के लोगों ने साफ किया था''भुईहरी भूमि'' कहलाती है। उराँव में यह मान्यता है कि जंगल को उन्होंने साफ किया,उसके अन्दर

रहने वाले नादा जंगल के काटे जाने पर क्रोधित होते हैं। अत: उन्हें प्रसन्न करना आवश्यक हो जाता है। इसे क्षेत्रीय नाद कहते हैं। यह नाद उस समूह के लोगों का खूंट नाद कहलाता है।

खूंट नाद उराँव के लिए बहुत पवित्र होता है, क्योंकि यह उनके पूर्वजों की श्रेणी में आता है। मुण्डा परिवार में भी सम्पत्ति का विभाजन होता था। उराँव परिवार में यह व्यवस्था थी कि पिता की मृत्यु तक पुत्र विभाजन के बारे में माँग नहीं करता था लेकिन यह पिता पर निर्भर करता था कि वह अपने जीवन काल में अपनी इच्छा से सम्पत्ति का विभाजन कर सकता था।[12] एन. कुमार ने राँची गजेटियर में उल्लेख किया है कि मुण्डा अथवा उराँव जाति में वृद्ध होने का कोई पारम्परिक प्रमाण नहीं मिलता है, लेकिन मुण्डाओं ने उराँव को कृषि हेतु अपनी खूंटकट्टी जमीन दी तथा उन्हें अपने बीच रहने के लिए स्थान दिया था।[13]

छोटानागपुर का क्षेत्र जनजातियों का एक समृद्ध क्षेत्र रहा है। छोटानागपुर के क्षेत्र में नये लोगों का आगमन पहले से ही जारी था। आंद्रे विन्क और सी.ए. बेली जैसे इतिहासकारों का मानना है कि मुगल शासन के शासकों ने उस व्यवस्था को मजबूत किया। मुजफ्फर आलम की पुस्तक 'दि क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन मुगल नार्थ इण्डिया अवध एण्ड दि पंजाब' (1707-1748) में भी उन्होंने उन ताकतों का वर्णन किया है जिसके अंतर्गत प्रशासनिक व्यवस्था ने नये रोष को जन्म दिया और बाद में विद्रोह हुए।[14]

1761 तक मुगल साम्राज्य नाममात्र के लिए साम्राज्य रह गया था। उसके कमजोर होने के फल स्वरूप स्थानीय राजाओं ने स्वाधीनता के ढांचे को प्रस्तुत किया। मुगल शासक शाह आलम से 1765 ई. में दीवानी के हस्तांतरण स्थायी बन्दोबस्ती 1793 ई. तक के समय में कम्पनी की व्यवसायिक वृद्धि का पता चलता है। कम्पनी को तीन प्रांत बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी के बदले में बादशाह शाह आलम को 26 लाख रूपये प्रतिवर्ष देने थे।[15]

1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी मिलने के बाद अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल करना भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासन की प्रमुख चिंता रही थी। खेती अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी। वह आय का प्रमुख स्त्रोत थी और इस कारण वसूली बढ़ाने के लिए मालगुजारी में नये-नये ढंग से प्रयोग किये गये।[16] 1765 में कम्पनी ने दीवानी अधिकार अपने हाथों में लिया तब से वह राजस्व व्यवस्था को बढ़ाना चाहती थी। कंपनी इस मामले में लगातार प्रयास कर रही। इसमें सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन वार्षिक नीलामी के आधार पर बंदोबस्ती की गयी, जिसके अंतर्गत राजस्व की वसूली अधिक हो। 1765-66 और 1768-69 के बीच भू राजस्व की वसूली में 53.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[17] अफ्रीका के एक भिन्न औपनिवेशिक संदर्भ में इसी तरह के साम्राज्य पर विचार करते हुए फॉरेन फील्ड्स सस्ते में सत्ता की जरूरत के रूप में इसकी व्याख्या करते हैं। इसका सर्वाधिक प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ स्थानीय धर्मतंत्र के सहयोजन के द्वारा और बिना किन्हीं अनुवर्ती कठिनाइयों अथवा प्रशासनिक खर्च के एक विशाल क्षेत्र का राजनीतिक संगठन हो गया। अत: ब्रिटिश औपनिवेशिकों का विस्तार एक लाभप्रद सौदे के रूप में सामने आया।[18]

बंगाल के नवनियुक्त गवर्नर वॉरेन हेस्टिंग्स की इच्छा थी कि मालगुजारी प्रशासन को भारतीयों से एकदम मुक्त कराकर अंग्रेजों को प्रांत के संसाधनों का एकमात्र नियंत्रक बना दिया जाए। अंग्रेजी प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कंपनी चाहती थी कि सारे अधिकार उनके अधिकार क्षेत्र में हो, इस कारण 1769-70 के बंगाल के अकाल के बाद एक नयी व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। 1772 ई. में 'फार्मिंग' के नाम पर एक नयी व्यवस्था को लागू किया गया। जिलों के यूरोपीय क्लेक्टरों को अब मालगुजारी की वसूली का कार्यभार दे दिया गया। प्रशासन ने यह बड़ी ही चालाकी से वसूली का अधिकार सबसे बड़ी बोली लगाने वालों को दिया जाने लगा। बंदोबस्तों में राजस्व के अधिक प्रयोगों ने अंग्रेजी व्यवस्था की मुश्किलों को बढ़ाया। बंदोबस्ती व्यवस्था ने किसानों को तोड़कर रख दिया। उत्पादन की चिंता के बिना अधिक वसूली की कोशिश होती थी।[19]

लॉर्ड कार्नवालिस जिसने 1786 ई. में कम्पनी में अपना योगदान दिया। वह दीवानी क्षेत्रों से अधिक लगान वसूल करने के लिए सर्तक था। पर्याप्त जाँच-पड़ताल के बाद डिसेनियल 'सेंटलमेंट एवं परमानेंन्ट सेटलमेंट' तैयार हुआ तथा कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने इसे स्वीकृति प्रदान की। परिणामस्वरूप 1793 ई. में लार्ड कार्नवालिस ने इस सेटलमेंट को स्थायी घोषित कर दिया और इस प्रकार 1793 ई. के अधिनियम के अनुसार स्थायी बन्दोबस्ती अधिनियम पारित एवं प्रभावी हुआ। 18 सितम्बर 1789 ई. को कम्पनी सरकार ने डिसेनियल सेटलमेंट को बिहार प्रांत के लिए घोषित किया और यह भी कहा गया कि यह अधिनियम छोटानागपुर में प्रभावी नहीं होगा लेकिन स्थायी बन्दोबस्ती को दस वर्षों तक यहाँ प्रभावी होने की बात भी कही गई। वस्तुत: कम्पनी अधिकारी भ्रम की स्थिति में

थे। यह पूछे जाने पर कि स्थायी बन्दोबस्ती एवं डिसेनियल सेंटलमेंट इस क्षेत्र में लागू हो गया है तो उत्तर होता था बाद में इसे लागू मान लिया जाना चाहिए। वस्तुत: छोटानागपुर की भूमि व्यवस्था शेष बंगाल से पूरी तरह अलग रही थी।

अत: कम्पनी अधिकारियों में पहले संशय की स्थिति बनी हुई थी कि स्थायी बन्दोबस्ती के अंतर्गत छोटानागपुर का राज्य आता है अथवा नहीं। 1799 ई. तक यह स्पष्ट हो गया था कि स्थायी बन्दोबस्ती छोटानागपुर क्षेत्र में प्रभावी है।[20] ईस्ट इण्डिया कंपनी का प्रवेश उड़ीसा के क्षेत्र से हुआ था। परन्तु कम्पनी ने पूरे छोटानापुर क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा था। वह सारे क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहती थी। छोटानागपुर क्षेत्र के आस-पास के सीमावर्ती क्षेत्रों पर भी कम्पनी अपना पूर्ण एकाधिकार चाहती थी। छोटानागपुर क्षेत्र में कम्पनी एक ठोस प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत कार्य कर रही थी। वह धीरे-धीरे सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार जमाती जा रही थी। कम्पनी के प्रवेश के समय झरिया, कतरास, रघुनाथपुर, झालदा, ईचागढ़, बलरामपुर, हेसला, बालमुंडी, पंचेत, सुपुर, चतरा तथा बड़ाभूम का क्षेत्र प्रमुख जमींदारियों का क्षेत्र था।

फर्गुसन ने 1767 में जब सिंहभूम में प्रवेश किया था उस समय मानभूम, बड़ाभूम, सुपुर, चतरा, अभियनगर के जमींदार शक्तिशाली थे। कतरस, ईंचागढ़ तथा पंचेत के जमींदारों को राजा कहा जाता था।[21] ईस्ट इण्डिया कंपनी ने सिंहभूम के अधिकांश क्षेत्रों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया, लेकिन सरायकेला और खरसाँवा पर उनका सीधा आधिपत्य स्थापित नहीं हो सका। ब्रिटिश भारत की 560 से अधिक देशी रियासतों में बिहार में केवल यहीं दो रियासतें थीं जिनपर अंग्रेजो का सीधा अधिकार संभव नहीं हो सका।[22]

छोटानागपुर क्षेत्र में ईस्ट इण्डिया कंपनी को पदस्थापित होने में सात दशक का लम्बा समय लग गया। छोटानागपुर खास में कंपनी का अधिकार जल्दी हो गया परन्तु 45 वर्षों का अधिक समय लगा। कंपनी का 1765-1820 ई. तक सम्पूर्ण छोटानागपुर पर अधिकार हो गया। ईस्ट इण्डिया कंपनी एक सोची-समझी रणनीति के तहत छोटानागपुर क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमाने में सफल हुई।[23] छोटानागपुर में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से यहाँ एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। इस क्षेत्र में असंतोष की व्यवस्था उत्पन्न हो गयी थी। छोटानागपुर का क्षेत्र प्राचीनकाल से ही जनजातियों का क्षेत्र रहा था।

छोटानागपुर प्रदेश में रहने वाली जनजातियों का विकास अलग-अलग चरण में रहा होगा। विकास के साथ-साथ इन्होंने कृषि योग्य भूमि को भी साफ किया और अपना निवास स्थान बनाया। जनजातियों को विश्वास था कि जिन्होंने सबसे पहले जंगलों को काटकर साफ किया वैसी भूमि पर खेती करने और स्वामित्व का अधिकार उन्हीं के वंशजों का था। मूलरूप से भूमि को आबाद करने वाले भुईहर या खूंटकट्टीदार कहे जाते थे। सामंती व्यवस्था की उत्पत्ति के साथ ही जनजातियों की भू-व्यवस्था भिन्न-भिन्न होने लगी।[24]

कम्पनी के सामने बड़ी समस्या राजस्व की वसूली थी,छोटानागपुर क्षेत्र में जनजातियों की भूमि के जोत अलग-अलग थे, जिससे किसान और कम्पनी के अधिकारियों को इसके राजस्व निर्धारण में समस्या आती थी। छोटानागपुर के अलग-अलग क्षेत्र में जोत के नाम भी अलग-अलग होते थे। पलामू में मुख्यत: जागीर और ईंजरा (नीलामी) थी। राँची खास के क्षेत्र में खूंटकट्टी भुईहरी पनहई और मांझा जोत के नाम थे। खूंटकट्टी और भुईहरी का प्रचलन अधिक था। पलामू, सिंहभूम और हजारीबाग में जोत या तो जागीर या जागीरकाजी या जागीर इनामी थे। कुछ जागीरदारों को सरकार की सहायता करने के कारण जागीर प्राप्त हुई थी।[25]

जनजातियों में असंतोष के व्यापक कारण थे। प्राशासनिक तौर पर व्यवस्था में परिवर्तन लाया जा रहा था। दीवानी और फौजदारी कानूनों को अत्यधिक कठोर बनाया जा रहा था। अंग्रेजों के आने पर उनका संपर्क एक आक्रामक संस्कृति से हुआ जिन्होंने उनके अधिकार क्षेत्रों में धीरे-धीरे घुसना शुरू किया और उनकी सांस्कृतिक व्यवस्था को नष्ट किया। औपनिवेशिक व्यवस्था जनजातियों के लिए एक नई त्रासदी बन कर आयी।[26]

अंग्रेजी शासन व्यवस्था का प्रभाव जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था पर पड़ना शुरू हो गया। कम्पनी के शासनकाल में आदिवासियों की प्रशासनिक व्यवस्था को नष्ट करने की कोशिश की गयी, जिसके कारण जगह-जगह असंतोष की भावना व्याप्त थी और वह बाद के वर्षों में निकल कर सामने आयी। कोल विद्रोह 1832-33 और संताल परगना का संतान विद्रोह कम्पनी काल के उत्पीड़न के उदाहरण है जिसके अंतर्गत राजस्व की वसूली जनजाति समुदाय के शोषण का कारण बनी और उसके प्रतिकार स्वरूप विद्रोह के रूप में सामने आया। अंग्रेजी कानून व्यवस्था दमन की नीति पर आधारित थी।[27]

अंग्रेजों ने जनजातियों को संघर्ष के लिए मजबूर कर दिया। सरकार नये-नये एक्ट के माध्यम में जनजातियों पर अपनी पकड़ मजबूत करना चाहती थी। 1857 के बाद के काल को छोटानागपुर के इतिहास का विद्रोह का संक्रमण काल कहा जा सकता है, क्योंकि कोल और संताल विद्रोह ने यहाँ के इतिहास का एक नया अध्ययन प्रारंभ किया।[28]

भूमि व्यवस्था के बिखराव और संस्कृति 'परिवर्तन की दोहरी चुनौतियों की प्रक्रिया के फलस्वरूप 1775 से 1831-32 तक जनजातियों के संघर्ष की गाथा अतुलनीय रही आदिवासियों की जमीन छीनी जाती रही। 1850 ई. के बाद छोटानागपुर में ईसाई मिशनरियों का प्रभाव बढ़ने लगा था। इस छोटानागपुर क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा ईसाई धर्म अपना लेने के कारण भूमि समस्याएँ जटिल होती गयी। कुछ लोगों ने धार्मिक उद्देश्यों में ईसाई धर्म को अपनाया था, परन्तु अधिकांश ईसाई धर्म की छत्र-छाया में इस आशा से आये थे कि ईसाई हो जाने के बाद उन्हें उनकी जमीन और अन्य अधिकारी से वंचित नहीं किया जायेगा।[29]

सरदारी लड़ाई भी भूमि के लिए लड़ी गयी जिसे मुल्की लड़ाई भी कहा गया। सरदारी लड़ाई 1859 के लगभग शुरू हुई और 40 वर्ष तक चली। बाद में बिरसा आन्दोलन का यही आधार बना। 1869 में भुईहरी सेटलमेंट लोगों के असंतोष को दूर नहीं कर सका। साथ ही जमींदारों और रैयतों के बीच आपसी विरोध बढ़ता जा रहा था। कोल विद्रोह के नेताओं की तरह सरदारी आंदोलन के नेताओं ने भी दावा किया कि वे वास्तव में उन लोगों के वंशज थे जिनके साथ सबसे शुरू में भूमि बंदोबस्त की गयी थी। उनका उद्देश्य जमींदारों को निकाल बाहर करना था। बैस बेगारी (जबरन मजदूरी) की वसूली राजस्व भूमि-राजा की नियत लगान वाली बन्दोबस्ती के लिए उपलब्ध भूमि पर कर की गैर कानूनी बढ़ोत्तरी खूंटकट्टी गाँवों में मुण्डा भू-मालिकों को पद संबंधित कारणों को लेकर सरदारी लड़ाई शुरू की गयी थी।[30] 1890 के बाद सरदारी आन्दोलन का स्वरूप राजनैतिक हो गया, 1890 ई. तक मुण्डा मानकियों ने समझ लिया कि मिशन उनकी समस्या का समाधान नहीं कर सकता। अत: उनके बीच मिशन का आकर्षण घट गया। इन आन्दोलनकारी मुण्डा मानकियों ने अपने को सरदार के नेता की संज्ञा दी, जंगल और जमीन की लड़ाई ही विद्रोह का कारण बनी।[31] 1865 ई. में सरकार ने पहली बार वन कानून बनाया। इससे जनजातियों को जंगल के अधिकार से वंचित होना पड़ा। 1878 के भारतीय वन अधिनियम ने इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और संसाधानों के पारम्परिक व्यवहार में बुनियादी बदलाव लाया। अब लकड़ी बेचने व खरीदने वाली वस्तु हो गयी जिसने वन परिस्थितिकी में परिवर्तन आया।[32]

भारतीय वन अधिनियम 1865 के अन्तर्गत सामुदायिक वन प्रबंधन के स्थान पर राज्य प्रबंध की पहल की बात की, तो राज्य द्वारा वन अधिग्रहण की प्रक्रिया भारतीय वन अधिनियम 1878 के अन्तर्गत ठोस रूप में ले सकी।[33] 1857 के बाद भू-राजस्व के क्षेत्र में प्रशासन को तत्काल सुधार करना पड़ा। 1876 में छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अनुसार रैयती जमीन सहित सभी प्रकार के जोतों का खाता खोलने का निर्णय लिया गया। 1881 में मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड कमीशन बनाया गया जिसके अन्तर्गत कमीशन के प्रतिवेदन दिया जिसके अन्तर्गत देश में स्थित आदिवासी क्षेत्र के बारे में चर्चा की गयी। 1899 में भारत सरकार अधिनियम बनाया और आदिवासी क्षेत्रों को दो भागों में विभाजित किय गया।[34]

पिछड़ा और अत्यंत पिछड़ा क्षेत्र

बिरसा आन्दोलन के भूमि संबंधी एवं धार्मिक प्रश्न एक-दूसरे के साथ संश्लिष्ट थे। परन्तु उसके साथ ही विदेशी राज को समाप्त करने की आकांक्षा भी थी। उसके समर्थक जमींदारों से मुक्ति पाने की कामना भी उसमें जुड़ी थी। मुण्डाओं की संस्थाओं पहड़ा और पंचायत को नष्ट किया जा रहा था जिसके कारण आदिवासियों में असंतोष था, इसी विरोधा के कारण आदिवासी क्षेत्रों में दो भागों में विभाजित कर दिया गया था। 1901 में निश्चित किया गया कि भूमि सर्वेक्षण तथा भू-बंदी का काम शीघ्रता से पूरा किया जाये जिसे पूरा कर नये प्रावधान में बदल दिया गया। बिरसा आन्दोलन के तुरन्त बाद अंग्रेजों के अधिकारियों को यह महसूस हुआ कि असंतुष्ट मुण्डाओं के जमीन संबंधी रिकॉर्डस ऑफ राइट्स शीघ्र तैयार करवाए जाए।[35]

निष्कर्ष:

छोटानागपुर की भूमि व्यवस्था में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि यहाँ कि खूँटकट्टीदार'और भूईहरी जमीन व्यवस्था आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था थी। इस व्यवस्था को बाद में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया। छोटानागपुर में ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन के बाद भू-राजस्व व्यवस्था में बदलाव किये गये जिससे कि आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह हुआ पर बाद में आदिवासियों की परम्परागत व्यवस्था को कानूनी मान्यता मिली जिससे कि भूमि संबंध कानूनों के अन्तर्गत उनकी भूमि को संरक्षण प्राप्त हुआ। अधिकारिक तौर पर आदिवासियों की जीत हुई।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सेन अशोक कुमार, 'विस्तृत आदिवासी इतिहास की खोज', जनमाध्यम, राँची, 2009, पृष्ठ 3-4
2. सुंदर नंदनी, 'गुंडा धुर की तलाश में', पैगविन इंडिया, 2009, पृष्ठ 11-13
3. रॉय एस.सी., मुण्डा एण्ड देयर कंट्री, 'कैथोलिक प्रेस, राँची, 1995, पृष्ठ 26-28
4. बनर्जी मान गोविंद, छोटानागपुर, झारखण्ड की ऐतिहासिक रूप रेखा, आदिकाल की ऐतिहासिक रूपरेखा, ब्रिटिश काल तक, एजुकेशन प्रेस, राँची, 2005, पृष्ठ 10-11
5. रॉय एस.सी., पूर्वोक्त, पृष्ठ 30-31
6. वही, पृष्ठ 30-31
7. तलवार वीर भारत, झारखण्ड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 60-61
8. रॉय एस.सी., पूर्वोक्त, पृष्ठ 71-72
9. वही, पृष्ठ 71-72
10. तलवार वीर भारत, पूर्वोक्त, पृष्ठ 60-61
11. सहाय राज, आदिम मुण्डा और उनका प्रदेश आदिवासी वेलफेयर सोसाइटी घोड़ाबांध, जमशेदपुर, 2017, पृष्ठ 88-99
12. कुमार योगेश, आदिवासियों की परम्परागत न्याय व्यवस्था, परिक्रमा प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ 92-94
13. कुमार एन, बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, राँची, गर्वमेन्ट ऑफ बिहार, पटना, 1970, पृष्ठ 137-138
14. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, भारत का इतिहास (1707 से 1857 तक), ओरियंटल ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 5-7
15. पावेल बी.एच., 'लैंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया भाग-1,क्लैरेडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड,1951, पृष्ठ 102-103
16. मार्शल पीटर, अर्ली ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म इन इंडिया पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, 1905, पृष्ठ 20-21
17. सुब्रमण्यम लक्ष्मी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 100-101
18. मिल्ड केरेन, रेवाईवल एण्ड रिबेलियन इन कोलोनीयल सेन्ट्रल अफ्रीका, प्रिंसेंटन युनिवर्सिटी प्रेस,1985,पृष्ठ 20-21
19. मार्शल, पी.सी., ईस्ट इंडिया फॉर्चुन, दि ब्रिटिश इन बंगाल इन दि 18 सेंचुरी, ऑक्सफोर्ड सेलेरेंडोन प्रेस, लंदन, 1976, पृष्ठ 24-25
20. झा जे.सी., दि ट्राइबल रिवोल्ट ऑफ छोटानागपुर (1831-1832), के.पी. जायसवाल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पटना, 1978, पृष्ठ 46-47
21. चौधरी शिश भूषण, सिविल डिस्ट्रीब्यूशन ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल इन इंडिया (1765-1867), पृष्ठ 65-69
22. औमली एल.एल.एस., बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, सिंहभूम सरायकेला एण्ड खरसांवा, लोगोस प्रेस, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 26-27
23. जर्नादन कुमार, कम्पनी इंडिया कम्प्रैरिहेनासिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1757-1856, जानकी प्रकाशन, पटना, 1950, पृष्ठ 5-7
24. डॉगल जॉन मैके, लैंड और रिलिजन दि सरकार एण्ड खरवार मोमेंटस इन बिहार 1858-95, मनोहर पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1985, पृष्ठ 4-5
25. बंगाल जूडिसियल स्क्रीनिंग अनुच्छेद 10, दिनांक-16 अक्टूबर 1795, पृष्ठ 14-16
26. ओमैली एल.एल.एस., पूर्वोक्त, पृष्ठ 35-36
27. चौधरी पी.सी. रॉय, 'बिहार में 1857 राजस्व विभाग', पटना, 1949, पृष्ठ 10-11
28. दत्ता, के.के., 'संताल हुल', एकता प्रकाशन, 1991, पृष्ठ 1-3
29. सहाय, के.एन.,अंडर द शैडो आफॅ दि क्रॉस, कलकत्ता, 1976, पृष्ठ 66-68
30. मैकडागल्स, जॉन पूर्वोक्त, पृष्ठ 46-47
31. वही, पृष्ठ 49-51
32. गाडगिल और गुहा, 'दिस फियुसरेड लैण्ड', ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 17-19
33. वही, पृष्ठ 17-19
34. काल्यान रश्मि, 'झारखण्ड पंचायत राज अधिनियम 2001', क्राउन पब्लिशिंग,राँची, 2012, पृष्ठ 230-231
35. रीड जे.,'रिपोर्ट ऑफ दि सर्वे एण्ड सेटलमेंट ऑपरेशन इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ राँची, 1902-1910, कलकता, 1910, पृष्ठ 25-26